DSSSB TGT & PGT
दिल्ली अधीनस्थ सेवा चयन बोर्ड
ROJGAR WITH ANKIT
Part-B
SCHOLAR BATCH
संस्कृत
अर्थविज्ञान
Part -2
LIVE 20-04-2024 05:00 PM

DSSSB TGT & PGT

अर्थपरिवर्तन (अर्थविकास) की दिशाएँ

संसार की सभी वस्तुएँ परिवर्तनशील हैं। भाषा भी परिवर्तनशील है । जिस प्रकार ध्वनियों में परिवर्तन होता है, उसी प्रकार प्रत्येक भाषा के शब्दों के अर्थों में भी परिवर्तन होता रहता है । इस अर्थ परिवर्तन को विकास - सिद्धान्त की दृष्टि से 'अर्थविकास' भी कहा जाता है। यह अर्थ- परिवर्तन तीन प्रकार का होता है –

१. कहीं पर अर्थ का विस्तार होता है,

२. कहीं पर अर्थ में संकोच होता है,

३. कहीं पर पुराने अर्थ के स्थान पर नया अर्थ आ जाता है । इन्हें ये नाम दिए गए हैं

(१) अर्थविस्तार (Expansion of Meaning)

(२) अर्थसंकोच (Contraction of Meaning)

(३) अर्थादेश (Transference of Meaning)

इन तीनों के जो उदाहरण मिलते हैं, उन पर विचार करने से ज्ञात होता है कि कुछ स्थानों पर अर्थ अपने मूल अर्थ से उत्कृष्ट हो गया है और कहीं पर वह अपने मूल अर्थ से निकृष्ट, अपकृष्ट या घटिया हो गया है । इस दृष्टि से भी इनको दो भागों में रखा जाता है। ये उपर्युक्त तीनों

भेदों में आते हैं; परन्तु सुविधा के लिए इन पर अलग भी विचार किया जाता है। ये भेद हैं-

(क) अर्थोत्कर्ष (Elevation of Meaning)

(ख) अर्थापकर्ष (Deterioration of Meaning)

(१) अर्थविस्तार

कुछ शब्द मूल रूप में किसी विशेष या संकुचित अर्थ में प्रयुक्त होते थे। बाद में उनके अर्थ में विस्तार हो गया।

जैसे-

१. कुशल - कुशल शब्द का अर्थ था— कुशान् लाति (कुशों को लाना या लेना) । कुश का अग्रभाग तीक्ष्ण होता है, उससे हाथ में छेद होने या कटने का भय रहता था। अतः कुश लाना चतुरता का सूचक था। अतएव तीक्ष्ण बुद्धि को 'कुशाग्रबुद्धि' कहा जाता है। यह शब्द धीरे-धीरे 'कुश लाना' अर्थ को छोड़कर 'चतुरता' और 'निपुणता' का अर्थ देने लगा। इस प्रकार इसके अर्थ में विस्तार हो गया । 'वह संगीत में कुशल है, वह शास्त्रों में कुशल है, वह खेलने में कुशल है, आदि।

२. प्रवीण - 'प्रवीण' का अर्थ था—प्रकृष्टो वीणायाम् (वीणावादन में श्रेष्ठ या निपुण) | यह शब्द वीणा वादन की निपुणता को छोड़कर केवल 'निपुण' या दक्ष (चतुर) अर्थ में प्रयुक्त होने लगा है। इसमें भी अर्थविस्तार हुआ है। जैसे—यह कृषिकर्म में प्रवीण है, यह साहित्य या दर्शन में प्रवीण है, यह कला में प्रवीण है, आदि।

३. तैल – सबसे पहले 'तिल' का तेल (द्रव) निकला था। उसके आधार पर तैल (तेल) नाम पड़ा। इसका अर्थ-विस्तार हुआ और अब यह तेल या द्रवमात्र के लिए. प्रयुक्त होने लगा है। सरसों का तेल, मूँगफली का तेल, बादाम का तेल आदि। यहाँ तक कि मिट्टी का तेल भी तेल में है। तिल के तेल के लिए 'तिलतैलम्' कहना पड़ा।

४. गोशाला, गोष्ठ- गायों के रहने के स्थान को गोशाला या गोष्ठ कहते थे । उसमें बैल, भैंस, बकरी आदि भी बँधते हैं, फिर भी गोशाला नाम है। इस प्रकार गोशाला का अर्थ बढ़ा। इसी प्रकार गोष्ठ (गोठ) का भी अर्थ बढ़ा। गोष्ठ से गोष्ठी बना है — उसमें केवल बैठना अर्थ रह गया है। गोष्ठी में पशु के स्थान पर छात्र, अध्यापक, मनुष्य, विद्वान् सभी

बैठते हैं। गोष्ठ शब्द इतना प्रचलित हुआ कि इसमें गो (गाय) का अर्थ जाता रहा और गो-गोष्ठम् (गाय-शाला), अविगोष्ठम् (भेड़-शाला), अजा-गोष्ठम् (बकरी - शाला) कहना पड़ा ।

५. महाराज —यह राजा या महाराजा के लिए था, परन्तु इतना अर्थविस्तार हुआ कि किसी भी भद्र पुरुष को 'महाराज' कह सकते हैं। 'महाराज' रसोइया के अर्थ में बहुत प्रसिद्ध है।

६. गवेषणा — प्रारम्भ में 'गाय चाहना' अर्थ में था । फिर यह 'गाय ढूँढ़ना' अर्थ में आया। अब इसमें से गाय अर्थ हटकर केवल ढूँढना, खोज करना, अर्थ रह गया है। अब शोधकार्य के अर्थ में इसका प्रयोग होता है ।

इसी प्रकार मषी या स्याही (काली स्याही) का अर्थ विस्तृत होने से सभी प्रकार की स्याही को 'स्याही' कहते हैं। 'अधर' नीचे के ओठ के लिए था। अब दोनों ओठों के लिए हो गया। इसी प्रकार बैल, पशु, गधा, उल्लू आदि शब्दों का अर्थ विस्तृत हुआ और ये 'मूर्ख' का भी अर्थ बताने लगे ।

(2) अर्थसंकोच

अर्थविस्तार के विपरीत कुछ शब्दों के अर्थों में संकोच हुआ है। उनका विस्तृत अर्थ संकुचित या सीमित हो गया है। यास्क ने निरुक्त में वस्तुओं के नामकरण पर विचार करते हुए—गो, अश्व, पृथ्वी आदि के उदाहरण देकर बताया है कि इनका व्युत्पत्ति- लभ्य अर्थ बहुत विस्तृत है, परन्तु ये किसी विशेष अर्थ में रूढ़ हो गए हैं। 'गच्छतीति गौः' चलने वाले को 'गो' (गाय) कहते हैं। मनुष्य भी चलता है, उसे गो (गाय) नहीं कह सकते। ' अश्नुते अध्वानम् इति अश्वः ' सड़क पर चलने वाले को 'अश्व' (घोड़ा) कहते हैं। सभी सड़क पर चलने वालों को 'अश्व' (घोड़ा) नहीं कह सकते। प्रथनात् पृथ्वी' फैली होने के कारण 'पृथ्वी' (भूमि)

नाम पड़ा। फैली हुई चादर, तम्बू, शामियाना को पृथ्वी नहीं कहेंगे। 'मनुष्यः मननात्' मनन या चिन्तन करने वाले को 'मनुष्य' कहते । मनुष्य जातिवाचक नाम हो गया, अतः चिन्तक और मूर्ख सभी मनुष्य हैं। इससे ज्ञात होता है कि नामकरण का वह आधार तात्कालिक कोई गुण या तत्त्व होता है । बाद शब्द किसी विशेष अर्थ में रूढ़ हो जाता है। उसका व्युत्पत्ति के आधार पर सर्वत्र प्रयोग नहीं कर सकते हैं । अतएव आचार्य विश्वनाथ ने साहित्य दर्पण में कहा है कि 'शब्दों की व्युत्पत्ति का आधार दूसरा है और प्रयोग का आधार दूसरा '। लोक-व्यवहार के आधार पर ही प्रयोग होता है, व्युत्पत्ति के आधार पर नहीं इसको ही 'अर्थसंकोच' कहते हैं।

'अन्यद्धि शब्दानां व्युत्पत्ति - निमित्तम्, अन्यच्च प्रवृत्तिनिमित्तम्' ।

इसके सैकड़ों उदाहरण हैं। सभी वस्तु नाम अर्थसंकोच के उदाहरण हैं । व्युत्पत्ति के आधार पर उनका व्यापक अर्थ है, परन्तु वस्तु-नाम होने पर वे उस अर्थ में रूढ़ हो गए हैं। **जैसे –**

(१) जगत्, संसार, संसृति (संसार) – इनके व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ हैं- गतिशील, संसरणशील । परन्तु ये शब्द 'संसार' अर्थ में रूढ़ हो गए हैं।

(२) वारिज, अम्बुज, सरसिज, सरोज, पंकज, नीरज – इनका शाब्दिक अर्थ है – जल, तालाब, या कीचड़ में होने वाला। परन्तु ये शब्द 'कमल' अर्थ में रूढ़ हो गए हैं। मछली, काई, कीड़े आदि को नहीं कह सकते।

(३) जलद, तोयद, अम्बुद, वारिवाह (बादल) का अर्थ है – जल देने वाला, जल धारण करने वाला । ये. 'बादल' अर्थ में रूढ़ हो गए हैं,

(४) वारिधि, नीरधि, अम्बुधि, तोयधि (समुद्र) का अर्थ है – जल धारण करने वाला। ये शब्द 'समुद्र' अर्थ में रूढ़ हो गए हैं। बाल्टी, कंडाल, हौज को वारिधि नहीं कह सकते।

(५) सर्प रेंगने वाला । यह 'साँप' अर्थ में रूढ़ हो गया है। रेंगने वाले केंचुए आदि को सर्प नहीं कहेंगे।

(६) पर्वत - पर्व (गाँठ) वाला। 'पहाड़' अर्थ में रूढ़ हो गया है। पर्व वाले गन्ने को पर्वत नहीं कहेंगे।

(७) तटस्थ, मध्यस्थ, उदासीन — किनारे पर खड़ा, बीच में खड़ा, ऊपर बैठा हुआ, ये शाब्दिक अर्थ हैं। परन्तु इनका प्रयोग 'निष्पक्ष' के अर्थ में होता है।

(८) मन्दिर का अर्थ भवन था । यह देवमन्दिर अर्थ में प्रसिद्ध हो गया है ।

(६) मृग — पशु - मात्र के लिए था । अब केवल 'हिरन' अर्थ रह गया है । अंग्रेजी का Deer भी पशु- मात्र का वाचक था, अब 'हिरन' अर्थ रह गया है।

(१०) सभ्य – सभा में बैठने वाला । अब सुसंस्कृत, शिष्ट के लिए है।

(११) श्राद्ध – श्रद्धायुक्त कर्म । अब मृतक श्राद्ध में ही प्रचलित है ।

(१२) तर्पण - तृप्त करना। यह भी मृतकों के लिए रह गया है।

(१३) अनुकूल, प्रतिकूल — किनारे के इधर, किनारे के उधर । इसमें से कूल (किनारे) का अर्थ हट गया। अब केवल 'हितैषी' और 'विरोधी' अर्थ रह गए।

(१४) वेदना सुख और दुःख दोनों के अनुभव के लिए था। अब केवल 'दुःख' अर्थ रह गया है।

(१५) घृणा – दया और घृणा दोनों अर्थों में था। अब केवल 'घृणा' अर्थ है, 'दया' नहीं ।

प्रो० मिशेल ब्रेआल का यह कथन ठीक है कि राष्ट्र या जाति जितनी अधिक . विकसित होगी, उसकी भाषा में 'अर्थसंकोच' के उदाहरण उतने ही अधिक मिलेंगे। इसका अभिप्राय यह है कि संस्कृति और सभ्यता के विकास से सामान्य शब्द विशेष अर्थों में प्रयुक्त होने लगते हैं । अतः 'अर्थसंकोच' हो जाता है। 'अर्थसंकोच' के कुछ कारण ये हैं-

(क) समास- समास से अर्थ-संकोच हो जाता है। कृष्णसर्पः (साँप की एक, जाति), राजपुरुषः (राजकीय कर्मचारी), मनसिजः, मनोजः (कामदेव), चतुर्मुखः (ब्रह्मा), दशाननः (रावण), पीताम्बरः (कृष्ण), नीलाम्बरः (बलराम), शितिवासाः (बलराम), गजवदन (गणेश), पुरारिः (शिव) । पश्यतोहरः (सुनार, देखते-देखते चुराने वाला) ।

(ख) उपसर्ग—उपसर्ग लगाने से अर्थ संकुचित हो जाता है। जैसे – योग, संयोग, वियोग, उपयोग, आयोग, नियोग, प्रयोग। गम-आगम, निगम, सुगम, दुर्गम, संगम, उद्गम। कार — प्रकार, आकार, विकार, संस्कार, प्रतिकार। हार—आहार, विहार, प्रहार, संहार । चार—प्रचार, आचार, विचार, संचार ।

(ग) प्रत्यय — प्रत्यय लगाने से अर्थ संकोच होता है। मन्-मति, मनन, मत, मान, मानक । युज् — योग, योजना, आयोजन, प्रयोजन! कृ—कार, कारक, करण, कृति, कर्तव्य, कर्म । भुज् – भोग, भोजन, भोजक । व्यंज् — व्यक्ति, व्यंजन, व्यंजना, व्यक्त । भज्– भाग, भजन, भक्ति दुर्जन,

(घ) विशेषण - विशेषण लगाने से अर्थ- संकोच हो जाता है। जन --- सज्जन । आचार —— दुराचार, सदाचार, कदाचार (कुत्सित आचरण) । कमल --- नील- कमल, श्वेत कमल, रक्त कमल ।

पुरुष — भद्र पुरुष, दुष्ट पुरुष, नीच पुरुष ।

(ङ) नामकरण — किसी वस्तु का नाम रख देने से अर्थसंकोच हो जाता है। मानव, दानव, सुर, असुर, देव, गन्धर्व, अप्सरा आदि । कृष्ण, कृष्णा, गौरी, नकुल, भीम, युधिष्ठिर, राम, लक्ष्मण, अशोक, बुद्ध आदि । गंगा, यमुना, हिमालय, नर्मदा, विन्ध्य, हिन्द महासागर, प्रशान्त महासागर |

(च) पारिभाषिकता — शब्दों का पारिभाषिक अर्थों में प्रयोग | भाषाविज्ञान- स्वन, स्वनिम, ध्वनि, ध्वनिग्राम । काव्यशास्त्र —— रस, लक्षणा, व्यंजना । व्याकरण— गुण, वृद्धि, आगम, आदेश, धातु, प्रत्यय ।.

DSSSB TGT & PGT

(३) अर्थादेश

अर्थादेश का अर्थ है, एक अर्थ के स्थान पर दूसरे अर्थ का आ जाना। आदेश का अर्थ है – एक को हटाकर दूसरे का आना । अर्थादेश में शब्द का प्राचीन अर्थ लुप्त हो जाता है और नया अर्थ आ जाता है। जैसे

(१) असुर- मूल अर्थ असु + र (प्राणशक्तिसंपन्न) 'देवता' था। बाद में सुर (देवता) का उल्टा अ + सुर (राक्षस) अर्थ गया।

(२) वर—मूल अर्थ 'श्रेष्ठ' था। अब केवल 'दूल्हा' अर्थ रह गया है ।

(३) सह-वेद में सह धातु का अर्थ 'जीतना' था। अब 'सहन करना' अर्थ रह गया है।

(४) मौन-मूल अर्थ 'मुनि-कर्म' या मुनियों का आचरण था। अब 'चुप रहना' अर्थ रह गया है ।

(५) देवानां प्रियः — देवों का प्रिय । अशोक की उपाधि थी । बौद्धों से द्वेष के कारण ब्राह्मणों ने 'देवानां प्रियः' का अर्थ 'मूर्ख' कर दिया।

(६) बौद्ध-बुद्ध बौद्ध धर्मावलम्बी को बौद्ध कहते थे। उसके अपभ्रंश रूप 'बुद्ध' का अर्थ 'मूर्ख' हो गया।

(७) पाषण्ड –अशोक के समय में एक संप्रदाय था । इन्हें दान दिया जाता था। इसके रूपान्तर 'पाखण्ड' का अर्थ 'ढोंग, दिखावा' रह गया है।

(८) आकाशवाणी- देवताओं की वाणी लिए था। अब All India Radio के लिए प्रयुक्त होता है।

(9) साहस - साहस का प्राचीन अर्थ चोरी, डकैती आदि था। अब इसका 'उत्साहपूर्ण कार्य' अर्थ में प्रयोग होता है।

(१०) खाद्य - खाद – खाद्य शब्द 'भक्ष्य' (खाने योग्य वस्तु) के लिए था। उसका रूपान्तर 'खाद' केवल कृषि के लिए उर्वरक है।

(११) भद्र-भद्दा- भद्र का अर्थ था 'सुशील, विनीत, उच्च'। इसके विकसित रूप 'भद्दा' का अर्थ 'गन्दा, बुरा हो गया है ।

(१२) मुग्ध - मूल अर्थ था 'मूर्ख'। इसका अर्थ हो गया है - 'मोहित होना' सौन्दर्य पर मुग्ध होना।

(१३) वाटिका - बाड़ी संस्कृत में वाटिका का अर्थ था—बगीचा। बंगला में यह 'बाड़ी' (घर) हो गया है।

(१४) कर्पट - कपड़ा — कर्पट का प्राचीन अर्थ था—फटा वस्त्र । इसका विकसित रूप 'कपड़ा' है। यह अच्छे कपड़े के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा है।

(४) अर्थोत्कर्ष

अर्थ की दृष्टि से विचार करने पर ज्ञात होता है कि अर्थविकास की जो तीन दिशाएँ बताई गई हैं, उनमें कुछ शब्दों में अर्थपरिवर्तन से अर्थ में उत्कर्ष आया है और कुछ में अर्थ में अपकर्ष (निकृष्टता)। जिन शब्दों में अथोत्कर्ष हुआ है, उनके कुछ उदाहरण ये हैं-

(१) मुग्ध - मूर्ख अर्थ में था, अब 'मोहित होना' अच्छे अर्थ में प्रयुक्त होता है।

(२) साहस - साहसी — साहस -डाका डालना, चोरी, व्यभिचार आदि अर्थ में था, अब यह 'साहस' — उत्साहयुक्त कार्य और 'साहसी'– उत्साही अर्थ में से अर्थोत्कर्ष प्रयुक्त होने है

(३) कर्पट- हुआ कर्पट-कपड़ा—'कर्पट' फटे- चीथड़े के लिए था, अब 'कपड़ा' अच्छे वस्त्र के अर्थ में आता है ।

(४) फिरंगी - पुर्तगाली डाकू के लिए था, अब 'यूरोपियन' के लिए है।

(५) गोष्ठ गोष्ठी – गोष्ठ गोशाला के लिए था, उससे बना 'गोष्ठी' सभ्य समाज की सभा के लिए है ।

(६) गवेषणा – गाय ढूँढ़ना अर्थ था, अब अनुसंधान' अर्थ हो गया है।

(७) सभ्य सभा में बैठने वाले के लिए था, 'सुसंस्कृत' के लिए है ।

(५) अर्थापकर्ष

इसी प्रकार अर्थपरिवर्तन से कुछ शब्दों के अर्थों में अपकर्ष (हीनता, निकृष्टता) आया है। जैसे-

(१) असुर — ऋग्वेद में देव - वाचक था, संस्कृत में 'राक्षस' हो गया।

(२) जुगुप्सा - पालन करना, छिपाना अर्थ था, अब 'घृणा' अर्थ रह गया

(३) शौच - पवित्र कार्य के लिए था (शुचि > शौच), अब 'मल-त्याग' अर्थ हो गया ।

(४) **देवानां प्रियः —** देवों का प्रिय, अशोक राजा अर्थ था, अब 'मूर्ख' अर्थ रह गया।

(५) घृणा - संस्कृत में घृणा का 'दया' अर्थ भी था, अब केवल 'घृणा' अर्थ रह गया।

(६) महाराज - बड़े राजा के लिए था, अब 'रसोइया' रह गया।

(७) भद्र-भद्दा – भद्र 'सुशील' के अर्थ में था। उसका विकसित रूप 'भद्दा' 'गंदा-बुरा' अर्थ रह गया।

(८) चतुर्वेदी - चौबे - चतुर्वेदी 'चारों वेदों के ज्ञाता' के लिए था, उसका विकसित रूप 'चौबे' केवल 'अधिक खाने वाला' अर्थ में रह गया।

(६) हरिजन - शिल्पकार — हरिजन 'भक्त' के अर्थ में था, शिल्पकार — शिल्पी के अर्थ में था, अब दोनों शब्द 'शूद्र या अछूत' के अर्थ में हैं

(१०) लिंग — 'चिह्न' अर्थ था, अब 'इन्द्रिय - विशेष' के लिए हो गया है।

(११) उद्धार-उधार— उद्धार 'उद्धार करना', 'उधार' (उधार लेना) रह गया है।

(१२) .मधुर मधुर (मीठा) भोजपुरी में 'माहुर' (विष) हो गया ।

(१३) वज्रवटुक – 'पूर्ण ब्रह्मचारी' से 'बजरबट्टू' (महामूर्ख) हो गया ।

(१४) आबदस्त - नमाज पढ़ने से पूर्व हस्त-शुद्धि के लिए था, अब मलत्याग के बाद 'जल छूने' के लिए है।

(१५) कामशास्त्र, कोकशास्त्र – काम-सम्बन्धी शास्त्र थे, अब 'सेक्स - साहित्य' के लिए हैं।